प्रबंध निदेशक, स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद व अन्य

बनाम

पी. काटा राव

(सिविल अपील संख्या 2961-2962/2008)

24 अप्रैल 2008

[एस.बी. सिन्हा और डी.के. जैन, जे.जे.]

सेवा विधि - विभागीय कार्यवाही - समान्तर रूप से एक ही प्रकार आरोप होने पर आपराधिक कार्यवाही - अनुशासनात्मक अधिकारी द्वारा बर्खास्तगी का आदेश - आपराधिक कार्यवाही में सभी आरोपों को बरी करना -उच्चतर न्यायालय ने दोषी अधिकारी पर लगाए गए दंड पर फिर से विचार करने के लिए उचित अधिकारी को निर्देश दिया - माना गया: उच्चतर न्यायालयों को सामान्यतः सजा की मात्रा और जांच अधिकारी के निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए - आपराधिक कार्यवाही में दोषमुक्ति होने से विभागीय कार्यवाही पर भी रोक नहीं लगती - यद्यपि, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, बर्खास्तगी का आदेश सही नहीं है - सक्षम अधिकारी कोई अन्य उचित दण्ड दोषी अधिकारी पर अधिरोपित कर सकता है।

गैर-अपीलार्थी दोषी अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई, उस पर 12 आरोप लगाए गए। उसके विरुद्घ इसी प्रकार के आरोप आपराधिक मामले में लगाए जाकर कार्रवाई की गई थी। विभागीय कार्यवाही में, जांच अधिकारी ने गैर-अपीलार्थी को तीन आरोपों के अलावा सभी आरोपों का दोषी पाया। नियुक्त अधिकारी ने बर्खास्तगी का एक आदेश पारित किया। बर्खास्तगी आदेश के विरुद्ध अपील खारिज कर दी गई। इसके खिलाफ एक याचिका याचिका में, उच्च न्यायालय ने सजा के आदेश को रद्द कर दिया और अनुशासनात्मक अधिकारी को संशोधित सजा का कारण बताओ नोटिस जारी करने का निर्देश दिया। आदेश की पालना हेतु नोटिस जारी किया गया, लेकिन फिर से बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया गया। इसके खिलाफ अपील खारिज होने पर याचिका याचिका दायर की गई। इस बीच, आपराधिक कार्यवाही समाप्त हो गई क्योंकि उच्च न्यायालय ने गैर-अपीलार्थी को सभी आरोपों से बरी कर दिया।

गैर-अपीलार्थी ने बर्खास्तगी के दूसरे आदेश को चुनौती देते हुए याचिका याचिका दायर की। हाईकोर्ट की एकलपीठ ने बर्खास्तगी के दूसरे आदेश को दिए गए निर्देशों के विपरीत माना जो पूर्व में याचिका याचिका में पारित किए गए और मामले पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश दिया गया। इसके खिलाफ याचिका अपील में, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने

अपीलार्थीगण को गैर-अपीलार्थी के मामले पर फिर से विचार करने का भी निर्देश दिया, इसलिए वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है ।

न्यायालय ने अपीलों को खारिज करते हुए, अभिनिधारित किया

1. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने में उच्चतर न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र सीमित है। यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय भी सामान्यतः दी गई सजा पर हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इसके अलावा, इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है कि केवल इसलिए कि अपचारी कर्मचारी जो आपराधिक आरोप का सामना कर रहा था, बरी हो गया है, वही, अनुशासनात्मक अधिकारी को नए सिरे से कार्रवाई शुरू करने से नहीं रोकेगा और जहां विभागीय कार्यवाही पहले ही शुरू की जा चुकी है या उसके साथ जारी रही है। यह दृष्टिकोण कि न्यायालय का क्षेत्राधिकार असीमित है, हालांकि कुछ उच्च न्यायालयों का इस दृष्टिकोण का इसका समर्थन नहीं मिला। यद्यपि, आनुपातिकता सिद्घांत से अलग नहीं किया जा सकता। विधिक सिद्धांत इस आशय से प्रतिपादित किया गया है कि समांतर रूप से अपचारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही और एक आपराधिक मामले में कार्रवाई नहीं की जाएगी। इस न्यायालय का आदेश अपरिवर्तित है, जिसकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले में तथ्यों व परिस्थितियों पर निर्भर करती है। [पैरा 18, 19 और 20] [992-सी-जी]

कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड व अन्य। **1999 (3) एससीसी 679 संदर्भ लिया गया।**

2.1 मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण नहीं है। गैर-अपीलार्थी एक जिम्मेदार अधिकारी था. वह विश्वास के पद को धारण कर रहा था। उसके विरुद्घ समांतर रूप से आपराधिक कदाचार के आरोपों के साथ-साथ सिविल कदाचार दोनों के लिए कार्रवाई की गई थी। यद्यपि आरोप संख्या 11 और 15 सही मायने में आपराधिक कार्रवाई के विषय नहीं थे। यद्यपि, सत्यनिष्ठा और अध्वसाय के रूप में कार्यवाही सवालों के घेरे में नहीं थी। इस न्यायालय के समक्ष भी यह तर्क नहीं दिया गया है कि उसने कोई व्यक्तिगत लाभ अर्जित किया हो। उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में स्पष्ट रूप से कहा कि उसने केवल कुछ अनजाने में गलतियाँ की हैं। उनका कोई कदाचार करने का आशय नहीं था। उनकी ओर से कथित कदाचार न तो जानबूझकर किया गया था और न ही खाते में हेराफेरी करने का उनका कोई कपटपूर्ण आशय था। उच्च न्यायालय ने कहा कि अभियोजन दंड संहिता के प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराधों के लिए सभी उचित संदेहों से परे आरोपी के अपराध को सिद्घ करने में विफल रहा है। [पैरा 21, 22 और 26] [994-जी, एच; 995-ए; 992-जी, एच; 993-ए, बी, सी]

2.2 चूंकि गैर-अपीलार्थी को केवल प्रक्रियात्मक अनियमितता के लिए दोषी पाया गया है, यह कोई ग़लती नहीं है। यह एक उपयुक्त मामला नहीं है जहां के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए किया जाना आवश्यक है कि गैर-अपीलार्थी ने अब वह सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गया है और अपीलार्थी का सक्षम अधिकारी उस पर कोई भी उचित दण्ड अधिरोपित कर सकता है। [पैरा 29] [998-एफ, जी]

जीएम टैंक बनाम गुजरात राज्य व अन्य। **2006 (5) एससीसी 446 - का आधार माना गया।**

पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली बनाम नरेंद्र सिंह **2006 (4) एससीसी 265**; भारतीय स्टेट बैंक व अन्य बनाम टीजे पॉल **1999 (4) एससीसी 759**; भारत संघ बनाम जी गणयुथम **1997 (7) धारा 463 - संदर्भित किया गया।**

सोली जे. सोराबजी, ए.वी. अरंगम व बडी ए रंगधन अपीलार्थीगण की और से।

पी. कटा राव स्वयं उपस्थित।

निर्णय एस.बी. सिन्हा, जे. द्वारा पारित किया गया।

2. अपीलार्थी आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा याचिका अपील संख्या 627-628/2005 में पारित निर्णय व आदेश दिनाँक 04.06.2007 से असहमत व व्यथित है, जिसके तहत न्यायालय ने याचिका संख्या 476/2001 में एकलपीठ के निर्णय में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।

3. गैर-अपीलार्थी नियमित रूप से अपीलार्थी बैंक का कर्मचारी था, 13.8.1998 को या उसके आसपास उसे निलंबित कर दिया गया था। उनके खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की गयी. 12 आरोप लगाए गए, जिनमें से आरोप क्रमांक 11 और 15 इस प्रकार से है:

> "आरोप संख्या 11: उसने दो डीआईआर और एक नकद क्रेडिट उधारकर्ताओं को जारी ऋण राशि की आय में से, श्रीमती पी. लक्ष्मी, उसकी पत्नी के सोने के आभूषणों की गिरवी के खिलाफ मांग ऋण खातों में नकद और हस्तांतरण क्रेडिट को अधिकृत किया। इस प्रकार उसने अपनी पत्नी को अनधिकृत समायोजन की अनुमति देकर अनुचित आर्थिक लाभ प्राप्त करने में मदद की, यह उनकी पूर्व जानकारी में था।

आरोप संख्या 15: उसने मुख्यालय के परिपत्र संख्या एडीवी/98/ 1976 दिनांक 2 दिसंबर 1976 का उल्लंघन करते हुए अपने करीबी रिश्तेदारों को ऋण स्वीकृत और भुगतान किया।

4. उस पर एक आपराधिक मामले में भी कार्रवाई की गई थी, उसे आपराधिक आरोपों से बरी कर दिया गया।

5. यद्यपि, आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान विभागीय कार्यवाही जारी रही क्योंकि उस पर रोक लगाने की प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई थी। जांच अधिकारी ने पाया कि आरोप संख्या 1(ए), 2(बी), 3 को छोड़कर सभी आरोप साबित हुए।

6. नियुक्त अधिकारी ने बर्खास्तगी का आदेश पारित किया। गैर-अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई अपील को खारिज कर दिया गया।

7. दिनांक 29.12.1995 के आदेश द्वारा, अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी, 420 और 468 के तहत आपराधिक कार्यवाही में उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया गया था। उसे भ्रष्टाचार निवारण

अधिनियम की धारा 5(1)(डी) के साथ पठित धारा 5(2) के तहत कथित अपराध करने के आरोपों से भी बरी कर दिया गया।

8. यद्यपि, गैर-अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 477 (ए) के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (1) (डी) और 5 (2) के तहत दोषी ठहराया गया था। उसने इस निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील दायर की।

बर्खास्तगी के उक्त आदेश के विरुद्ध भी याचिका याचिका भी प्रस्तुत की गई थी।

9. उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 12.3.1999 के आदेश द्वारा सजा के आदेश को रद्द कर दिया और अनुशासनात्मक अधिकारी को कारण बताओ नोटिस सजा में परिवर्तन करने के संदर्भ में जारी करने का निर्देश दिया।

10. उक्त निर्देश के अनुसरण में कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था।

11. 2.7.1999 को पुनः बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया। उसके विरुद्ध की गई अपील खारिज कर दी गई। इससे व्यथित और असंतुष्ट गैर-अपीलार्थी द्वारा एक और याचिका याचिका दायर की गई थी।

12. अपीलार्थी द्वारा दायर आपराधिक अपील उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष विचार के लिए प्रस्तुत हुई और दिनांक 3.10.2001 के निर्णय और आदेश द्वारा, यह कहा गया:

"...ऐसे मामले में, यह विश्वास करना मुश्किल है कि अपीलार्थी का खुद को या अन्य व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने का कोई आशय था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विचारण न्यायालय का उपरोक्त तर्क सबसे मनमाना और बिना किसी आधार के है। मेरी राय में विचारण न्यायालय बिना किसी आधार के सीधे निष्कर्ष पर पहुंच गया था।"

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 477ए के तहत कथित अपराध के संबंध में, यह कहा गया था:

"उपरोक्त विवेचन से, मेरे विनम्र मत में अपीलार्थी ने जानबूझकर और धोखाधड़ी के बेईमान आशय से कथित

प्रविष्टियाँ नहीं की होंगी। यह निश्चित रूप से अभियोजन पक्ष का मामला नहीं है कि अपीलार्थी ने स्वतंत्र रूप से धारा 477 के तहत अपराध किया था - भा.द.सं. और इसके विपरीत अभियोजन पक्ष का विशिष्ट आरोप यह था कि शुरू में साजिश थी और इस तरह एक साजिश सभी आरोपियों के लिए जिम्मेदार विभिन्न अपराधों और विशेष रूप से अपीलार्थी के खिलाफ धारा 477-ए के तहत अपराध में उत्पन्न हुई।

इसलिए, शीर्ष अदालत द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणी के मद्देनजर और विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मौजूदा मामले में, अपीलार्थी के खिलाफ कोई प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना असुरक्षित है कि उसने आईपीसी की धारा 477-ए के तहत अपराध किया है। चूँकि आवश्यक सामग्री जैसे, 'इच्छाशक्ति' और धोखाधड़ी के 'आशय' को अपीलार्थी के खिलाफ अभियोजन द्वारा सफलतापूर्वक प्रमाणित नहीं किया जा सका। अपीलार्थी के मामले में, जैसा कि धारा 313 सीआरपीसी के तहत उसकी परीक्षा में कहा गया है, यह स्वीकार किया गया है कि यह केवल अनजाने में की गई एक गलती थी और उपरोक्त तथ्यों और

परिस्थितियों और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से, एकमात्र निष्कर्ष जो निकाला जा सकता है वह यह है कि आरोपी इसमें कोई संदेह नहीं है, हो सकता है कि उसने कुछ गलत प्रविष्टियाँ की हों, लेकिन इसे जानबूझकर किए गए कृत्य और खातों में हेराफेरी करने के कपटपूर्ण आशय के रूप में नहीं कहा जा सकता। इसलिए अपीलार्थी आईपीसी की धारा 477-ए के तहत अपराध से बरी होने का हकदार है। "

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(डी) और 5(2) के तहत दोषसिद्धि और सजा के फैसले को भी उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि अभियोजन पक्ष सभी उचित से परे आरोपी के अपराध को संदेह से परे साबित करने में विफल रहा है।

"... दूसरे शब्दों में जब अपीलार्थी को इस न्यायालय द्वारा धारा 477-ए , आईपीसी के तहत आरोप सहित सभी आरोपों से बरी कर दिया गया था, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपराध किया है ।"

14. अपीलार्थी द्वारा उसके खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ दायर याचिका याचिका उच्च न्यायालय के

विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष विचार के लिए आई। उच्च न्यायालय ने दिनांक 7.02.2005 को अपना निर्णय पारित करते हुए परिस्थितियों की समग्रता पर विचार किया।

बर्खास्तगी आदेश की सत्यता के संबंध में यह माना गया:

> "उक्त आदेशों को किसी भी तरह से सजा के पहलू पर नये सिरे से विचार करने का कारण नहीं माना जा सकता है और यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि पुनर्विचार केवल सजा के संबंध में है और वह भी पहले की सिफारिशों के आधार पर अपील में किया गया। इसलिए, आवश्यक रूप से यह इस प्रकार है कि बर्खास्तगी का आदेश जैसा कि पहले 23.07.1994 को लगाया गया था, संभवतः दोहराया नहीं जा सकता है या फिर से लागू नहीं किया जा सकता है। आवश्यक रूप से यह बर्खास्तगी या निष्कासन के आदेश के अलावा कोई अन्य दण्ड होना चाहिए। इसके अलावा, विशिष्ट निर्देश केवल पिछले अवसर पर अपील में दिए गए निर्देशों के संदर्भ में अनुवर्ती कार्रवाई करने के लिए है। इस प्रकार, उक्त निर्देशों के एक ठोस अध्ययन पर, पुनर्विचार के लिए एकमात्र गुंजाइश एक बार फिर से लेना है अपील में दिए गए पहले के निर्देशों पर विचार करें, अन्यथा नहीं, या कोई

अन्य दंड लगाने के लिए, बर्खास्तगी आदेश की तो बात ही छोड़ दें। उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और यहां तक कि उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों की तुलना में परिस्थितियों की समग्रता को भी ध्यान में रखते हुए और अपीलार्थी को आपराधिक पक्ष से बरी करना भी स्पष्ट है, हालांकि यह बाध्यकारी नहीं हो सकता है, आवश्यक रूप से गैर-अपीलार्थीगण को इस न्यायालय के पहले के आदेशों का पालन करना होगा, क्योंकि इसे ध्यान में नहीं रखा गया है और लगाए गए आदेश उक्त आदेश के संदर्भ में नहीं हैं। इसलिए, इस मामले पर अधिकारियों द्वारा नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। इन परिस्थितियों में, यह माना जाना चाहिए कि अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त करने में गैर-अपीलार्थीगण के आक्षेपित आदेश न केवल इस न्यायालय द्वारा 12.03.1999 को याचिका संख्या 16833/1994 में दिए गए निर्देशों के विपरीत हैं, बल्कि इसमें भी नहीं हैं। किसी भी तरह से उनके खिलाफ लगाए गए या पाए गए आरोपों की गंभीरता के अनुरूप।"

यह निर्देशित किया गया था:

"इन परिस्थितियों में, दोनों याचिका याचिकाओं पर गैर-अपीलार्थीगण के दिनांक 02.07.1999 और 02.02.2000 के दोनों आदेशों को रद्द करने और अपीलार्थी को नोटिस और अवसर देने के बाद विधिनुसार मामले पर नए सिरे से विचार करने और निपटान का निर्देश देने की अनुमति दी जाती है। गैर-अपीलार्थी को 01.08.1994 से 02.07.1999 तक निलंबन की अवधि के दौरान निर्वाह भत्ता और ऐसे सभी अन्य भत्ते का भुगतान करने का भी निर्देश दिया गया है, जिसका अपीलार्थी हकदार है। हर्जा नहीं लगाया गया।"

15. आदेशों के विरुद्ध एक इंट्रा-कोर्ट अपील प्रस्तुत की गई। खण्डपीठ ने दिनांक 4.06.2007 को अपने आक्षेपित फैसले में कहा:

"वर्तमान मामले में, हमने पाया कि जांच अधिकारी ने गैर-अपीलार्थी को 1(ए), 2(बी), 3 और 5 के आरोपों से बरी कर दिया था, जो उसके द्वारा दुरूपयोग और आर्थिक लाभ प्राप्त करने से संबंधित हैं। 1996 की आपराधिक अपील संख्या 12 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 03.10.2001 के फैसले का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गैर-अपीलार्थी को इस स्पष्ट निष्कर्ष के साथ सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया था कि ऐसा कुछ भी नहीं था। न तो बैंक को नुकसान हुआ और न ही गैर-अपीलार्थी द्वारा कोई आर्थिक लाभ लिया गया। इस प्रकार, इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर कि क्या गैर-अपीलार्थी वित्तीय गड़बड़ी और दुर्भावना का दोषी है, जांच अधिकारी और अदालत के निष्कर्षों के बीच कोई विरोधाभास

नहीं है, जिसने मामले का निपटारा कर दिया। आपराधिक अपील। चूंकि विद्वान एकल न्यायाधीश, जिन्होंने 1994 की याचिका याचिका संख्या 16833 का फैसला किया था और नियुक्ति अधिकारी, जिन्होंने इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के प्रकाश में मामले पर पुनर्विचार किया था, को दिए गए बरी के फैसले पर विचार करने का लाभ नहीं मिला। 1996 की आपराधिक अपील संख्या 12 में, एकमात्र उचित तरीका अपीलार्थीगण को गैर-अपीलार्थी के मामले पर फिर से विचार करने और विधिनुसार उचित आदेश पारित करने का निर्देश देना होगा।

यह निर्देशित किया गया था:-

> "परिणामस्वरूप, 2005 की याचिका अपील संख्या 627 को खारिज किया जाता है और 2005 की याचिका अपील संख्या 628 को इस निर्देश के साथ निपटाया जाता है कि नियुक्ति अधिकारी लगाए जाने वाले दंड की मात्रा के मुद्दे पर गैर-अपीलार्थी के मामले पर पुनर्विचार करेगा। उसे और इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर उचित आदेश पारित करेंगा।"

16. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अभिभाषक श्री सोली जे. सोराबजी कहा कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय

पारित करने में गंभीर त्रुटि की है क्योंकि वह इस पर विचार करने में विफल रहा: -

(i) कि आपराधिक अदालत ने गैर-अपीलार्थी के पक्ष में केवल संदेह का लाभ दिया; और

(ii) यहां तक कि बरी करने का आदेश भी सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित करने में बाधा नहीं हो सकता है, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक बैंक कर्मचारी को सख्त सत्यनिष्ठा बनाए रखने की आवश्यकता होती है।

17. यद्यपि, व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने वाले गैर-अपीलार्थी श्री पी. कटा राव कहा कि विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मामला दोनों सामान आरोपों पर आधारित थे। यह कहा गया कि उसके खिलाफ कदाचार का आरोप केवल कुछ प्रक्रियात्मक दिशानिर्देशों के उल्लंघन पर आधारित था और इस प्रकार, गंभीर प्रकृति का नहीं था। यह बताया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने पूरे रिकॉर्ड की जांच की और यह पाया कि गैर-अपीलार्थी किसी भी कदाचार का दोषी नहीं है और इसके अलावा उसने कोई आर्थिक लाभ भी प्राप्त नहीं किया है। यह भी कहा गया कि हेराफेरी के आरोप भी उनके विरुद्ध साबित नहीं हुए हैं।

18. इसमें कोई भी संदेह नहीं हो सकता है कि जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने में उच्चतर न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र सीमित है। यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय भी आमतौर पर सज़ा की मात्रा में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसके अलावा, इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं हो सकता है कि केवल इसलिए कि अपचारी कर्मचारी जो आपराधिक आरोप का सामना कर रहा था, बरी कर दिया गया है, वही अपने आप में, अनुशासनात्मक अधिकारी को नई विभागीय कार्यवाही शुरू करने से नहीं रोकेगा और/या जहां विभागीय कार्यवाही पहले ही शुरू कर दी गई थी या उसे जारी रखा जाना था।

19. हम इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर निर्धारित विभिन्न सिद्धांतों से अनभिज्ञ नहीं हैं। यह दृष्टिकोण कि न्यायालय का क्षेत्राधिकार असीमित है, हालांकि कुछ उच्च न्यायालयों को इसका समर्थन नहीं मिला, तथापि, आनुपातिकता के सिद्धांत की प्रयोज्यता से नहीं हुआ है।

20. इस आशय का कानूनी सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि समान तथ्यों के आरोपों पर अपराधी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मामले में कार्रवाई एक साथ नहीं की जाएगी, हालांकि, इससे विपरीत न्यायिक दृष्टांत कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड और अन्य [(1999) 3 एससीसी 679] में इस न्यायालय का

आदेश अपरिवर्तित है, हालांकि इसकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले की स्थितियों व तथ्यों पर निर्भर करती है।

21. मौजूदा मामला अपवादित है। गैर-अपीलार्थी एक जिम्मेदार अधिकारी था. वह विश्वास का पद धारण करता था। उस पर समान तथ्यों के आरोपों का आपराधिक व सिविल कदाचार दोनों के लिए कार्रवाई साथ-साथ की गई थी, इस अपवाद के साथ कि आरोप संख्या 11 और 15 सही मायने में आपराधिक कार्यवाही का विषय नहीं थे, सत्यनिष्ठा के रूप में तथापि, अध्यवसाय प्रश्नांकित नहीं था। हमारे सामने भी यह तर्क नहीं दिया गया है कि उसने कोई व्यक्तिगत लाभ कमाया अर्जित किया है।

22. उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में स्पष्ट रूप से कहा कि उसने केवल कुछ अनजाने गलतियाँ की हैं। उसका कोई कदाचार करने का आशय नहीं था. उनकी ओर से कथित कदाचार न तो जानबूझकर किया गया था और न ही खाते में हेराफेरी करने का उनका कोई कपटपूर्ण आशय था। उच्च न्यायालय ने कहा कि अभियोजन पक्ष भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराधों के लिए सभी उचित संदेहों से परे आरोपी के अपराध सिद्ध करने में विफल रहा है ।

उच्च न्यायालय का निर्णय एक निश्चित दृष्टिकोण से यह स्पष्ट करता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 477ए और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के

प्रावधानों के तहत उसे दोषी ठहराने वाले विद्वान विचारण न्यायाधीश का निष्कर्ष मनमाना था। उच्च न्यायालय ने अनुमान लगाया कि आरोपी के पक्ष में परिस्थितियों को विचारण न्यायाधीश द्वारा उसके खिलाफ गलत तरीके से जिम्मेदार ठहराया गया था।

23. उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने दिनांक 7.02.2005 के फैसले में केवल उक्त आपराधिक अपील में उच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, बल्कि रिकॉर्ड पर लाई गई अन्य परिस्थितियों पर भी नए सिरे से विचार करने और निर्णित करने का निर्देश दिया। गैर-अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर देने पर मामला विधिनुसार होगा। मुकदमे के पहले दौर में उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने देखा कि पूरे रिकॉर्ड का अध्ययन विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किया गया था। यह पाया गया कि सक्षम अधिकारी ने संचयी प्रभाव से केवल एक वेतन वृद्धि रोकने का दंड लगाया था, जिसे अपीलीय अधिकारी ने बिना संचयी प्रभाव के वेतन वृद्धि रोकने में संशोधित कर दिया और माना कि अनुशासनात्मक और अपीलीय अधिकारी इस पर विचार करने में विफल रहे। संशोधित दण्ड ने गैर-अपीलार्थी पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

24. इसके अलावा यह देखा गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी निर्देशों के कथित अनुपालन में, गैर-अपीलार्थी पर सेवा से बर्खास्तगी का दण्ड फिर से लगाया गया था।

25. यद्यपि, खण्डपीठ एक वेतन वृद्धि पर रोक लगाने के निष्कर्ष से असहमत थी। फिर भी यह पाया गया कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में गैर-अपीलार्थी की बर्खास्तगी से संबंधित मुद्दे पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। यह निर्देशित किया गया था:

> "ऐसा करते समय, संबंधित अधिकारी निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखेगा:
>
> (i) 1996 के दोनों अनुशासनात्मक अधिकारी ने गैर-अपीलार्थी को गबन, स्वयं के लिए व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने और बैंक को नुकसान पहुंचाने के आरोपों का दोषी नहीं पाया।
>
> (ii) एम. पॉल एंथोनी व जीएम टैंक के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के प्रकाश में 1996 की आपराधिक अपील संख्या 12 में इस न्यायालय के फैसले का प्रभाव।
>
> (iii) गैर-अपीलार्थी पर संचयी प्रभाव के बिना वेतन वृद्धि रोकने की संशोधित सजा संचयी प्रभाव के साथ वेतन वृद्धि रोकने की सजा के विपरीत एक मामूली जुर्माना है, जिसे कुलवंत सिंह गिल के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा एक बड़ा जुर्माना माना गया था।

(iv) सजा की आनुपातिकता पर विचार करते समय, प्रक्रियात्मक अनियमितताओं के बीच अंतर होता है, जिसमें वित्त के दुरुपयोग के कृत्यों से कदाचार होता है, जिससे संस्था को नुकसान होता है, आदि।"

26. मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हमें उक्त निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण नहीं दिखता, हालांकि हम कानून के उन सिद्धांतों को दोहराना चाहेंगे जिनका हमने यहां पहले उल्लेख किया है।

27. यद्यपि, हम देख सकते हैं कि श्री सोराबजी ने पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली बनाम नरेंद्र सिंह [(2006) 4 एससीसी 265] मामले में इस न्यायालय के फैसले को दृढ़ता से आधार बनाया है कि इसमें विभागीय कार्यवाही शुरू की गई थी। अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर इसे बरकरार रखा गया कि यद्यपि किसी आपराधिक कार्यवाही में आरोपी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 27 के संबंध में स्वीकार्य नहीं होगी, लेकिन यह उसके खिलाफ विभागीय रूप से आगे बढ़ने में बाधा नहीं होगी।

उस मामले में यह माना गया था:

"13. इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला के आधार पर अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि यदि किसी कर्मचारी को आपराधिक आरोप से बरी कर दिया गया है, तो यह अपने आप में उसके खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू न करने या हटाने का आधार नहीं होगा उसी स्थिति में बरी करने का आदेश पारित किया जाता है।"

इस अदालत ने अपचारी अधिकारी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति की प्रकृति और साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 के संबंध में उसके निहितार्थ पर विचार करते हुए यह माना कि अधिकरण यह मानने में सही नहीं था कि इकबालिया बयान विभागीय कार्यवाही में स्वीकार्य नहीं था।

जीएम टैंक बनाम गुजरात राज्य व अन्य [(2006) 5 एससीसी 446] में, बड़ी संख्या में पारित निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया:

"30. गैर-अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अभिभाषक द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्णय तथ्य और विधि के आधार पर अलग-अलग हैं। इस मामले में, विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मामला समान और समान तथ्यों समानांतर एक विभागीय मामले में आरोप पर आधारित हैं।

अपीलार्थी के खिलाफ और आपराधिक अदालत के समक्ष आरोप एक ही हैं। यह सच है कि विभागीय कार्यवाही और आपराधिक मामले में आरोप की प्रकृति गंभीर है। साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी के खिलाफ शुरू किए गए मामले की प्रकृति और जांच के दौरान उसके खिलाफ एकत्र की गई सामग्री और जैसा कि आरोप पत्र में दर्शाया गया है, उल्लिखित कारक एक ही हैं। दूसरे शब्दों में, आरोप, सबूत, गवाह और परिस्थितियां एक ही हैं। वर्तमान मामले में, आपराधिक और विभागीय कार्यवाही में पहले से ही तथ्यों के आरोपों पर ध्यान दिया गया है या दिया गया है, अर्थात्, अपीलार्थी के आवास पर छापेमारी, वहां से लेखों की बरामदगी। जांच अधिकारी श्री वीबी रावल व अन्य विभागीय गवाह एकमात्र ऐसे गवाह थे, जिन पर भरोसा करते हुए जांच अधिकारी ने पूछताछ की। उनके बयान के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलार्थी के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं। आपराधिक मामले में उन्हीं गवाहों की जांच की गई और जांच पर आपराधिक अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी के खिलाफ कथित अपराध को किसी भी उचित संदेह से परे साबित नहीं किया

है और अपीलार्थी को अपने न्यायिक फैसले से इस निष्कर्ष के साथ बरी कर दिया कि आरोप सिद्ध नहीं हुआ है. यह भी ध्यान देने वाली बात है कि न्यायिक घोषणा नियमित सुनवाई और तीखी प्रतिस्पर्धा के बाद की गई थी। इन परिस्थितियों में, विभागीय कार्यवाही में दर्ज निष्कर्षों को कायम रहने देना अनुचित, भेदभावपूर्ण और बल्कि कष्टप्रद होगा।

31. हमारी राय में, विभागीय और आपराधिक कार्यवाही में ऐसे तथ्य और साक्ष्य समान थे, जिनमें रत्ती भर भी अंतर नहीं था, अपीलार्थी को सफल होना चाहिए था। दृष्टिकोण और सबूत के बोझ के आधार पर आमतौर पर विभागीय और आपराधिक कार्यवाही के बीच जो अंतर साबित किया जाता है, वह इस मामले में लागू नहीं होगा। यद्यपि विभागीय जांच में दर्ज निष्कर्ष को अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा वैध पाया गया था, जब बर्खास्तगी को चुनौती देने वाली कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कर्मचारी को सम्मानजनक बरी कर दिया गया था, तो इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए और पॉल एंथनों केस 1 का निर्णय लागू होगा।

इसलिए, हमारा मानना है कि अपीलार्थी द्वारा दायर अपील स्वीकार किए जाने योग्य है।"

इसलिए, प्रत्येक मामले का निर्धारण उसके अपने तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए।

28. यद्यपि, हम देख सकते हैं कि इस न्यायालय ने, भारतीय स्टेट बैंक व अन्य बनाम टीजे पॉल [(1999) 4 एससीसी 759] में, यह माना:

"7. उपरोक्त आदेशों को एक याचिका में लिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने याचिका को स्वीकार करते हुए कहा कि आइटम 23 पर जांच अधिकारी का निष्कर्ष यह था कि कोई वित्तीय हानि साबित नहीं हुई थी और यदि यह पर्याप्त नहीं लेने का मामला था ऋणदाताओं से "प्रतिभूति" और प्रधान कार्यालय के निर्देशों के अनुसार अनुसमर्थन प्राप्त नहीं करने पर, उप-नियम नियम 22(vi)(सी) और (डी) उपनियम Vii के मद्देनजर ये आरोप पर्याप्त नहीं थे। बर्खास्तगी या निष्कासन का जुर्माना लगाने के लिए केवल मामूली जुर्माना लगाया जा सकता है. जांच अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार कर्मचारी द्वारा जानबूझकर किए गए किसी

भी कार्य के कारण कोई वास्तविक हानि नहीं हुई। जांच अधिकारी के समक्ष वित्तीय हानि का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। यह निष्कर्ष कि गैर-अपीलार्थी ने बैंक के हित को खतरे में डाला, बिना किसी सबूत पर आधारित था। दंड केवल छोटे-मोटे कदाचार के लिए ही होना चाहिए था। बैंक ऑफ कोचीन में सेवा की अवधि से संबंधित कथित कदाचार के बाद से एसबीआई नियम लागू नहीं थे। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि "हटाने की सजा" नहीं दी जा सकती थी क्योंकि यह बैंक ऑफ कोचीन नियमों के तहत दिए गए दंडों में से एक नहीं था। याचिका स्वीकार कर ली गई, आक्षेपित आदेश रद्द कर दिया गया। यद्यपि, यह देखा गया कि बैंक ऑफ कोचीन के नियमों के अनुसार बैंक मामूली कदाचार के लिए सजा दे सकता है।"

टीजे पॉल का मामला प्रधान कार्यालय के निर्देशों के उल्लंघन के साथ-साथ दोषी अधिकारी की ओर से घोर लापरवाही से जुड़ा था। यह मानते हुए कि यह भारत संघ बनाम जी. गणयुथम [(1997) 7 एससीसी 463] के मामले का संदर्भ देते हुए बड़ा कदाचार होगा, यह माना गया:

"19 हमारे विचार में, यह निर्णय मामले के तथ्यों पर लागू नहीं है। यहां न्यायालय नियोक्ता द्वारा दी गई सजा में इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं कर रहा है कि अदालत की राय में दी गई सजा गंभीरता के अनुपात से बाहर है। कदाचार। यहां, दंडों का क्रम स्वयं नियमों द्वारा तय किया गया है, अर्थात्, बैंक ऑफ कोचीन के नियम और न्यायालय केवल इस बात पर जोर दे रहा है कि अधिकारी नियमों द्वारा प्रतिबंधित अपने विवेक की सीमा तक ही सीमित है। जैसा कि बैंक ऑफ कोचीन के नियमों में "बड़े कदाचार" के लिए दंडों की गणना और सूची दी गई है, हमारा विचार है कि "हटाने" की सजा अपीलीय अधिकारी द्वारा नहीं दी जा सकती थी और बैंक के लिए जो कुछ भी स्वीकार्य था, वह था बिना किसी नोटिस के बर्खास्तगी के अलावा, नियमों के पैरा 22 (v) में उल्लिखित प्रमुख कदाचार के लिए एक या दूसरे दंड तक ही सीमित रहना। हमारे इस निष्कर्ष के लिए "हटाने" की सजा को अलग करने की भी आवश्यकता है जो कि दी गई थी। अपीलीय प्राधिकरण। पैरा 22(v) के तहत दिए गए अन्य दंड हैं "चेतावनी या निंदा या प्रतिकूल टिप्पणी दर्ज करना, या जुर्माना, या वेतन वृद्धि रोकना/मूल

वेतन में कटौती करना या कदाचार को माफ करना और केवल सेवा से बर्खास्त करना"। इस प्रकार उच्च न्यायालय द्वारा निष्कासन को रद्द करना और परिणामी लाभों की राहत कायम है। इसलिए, मामले को बिना किसी नोटिस के बर्खास्तगी के अलावा पैरा 22(v) में एक या अन्य सजा लगाने पर विचार करने के लिए अपीलीय अधिकारी के पास वापस जाना होगा।"

29. चूंकि गैर-अपीलार्थी को केवल प्रक्रियात्मक अनियमितता के लिए दोषी पाया गया है, हमारी राय है कि यह एक उपयुक्त मामला नहीं है जहां हमें संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए है कि गैर-अपीलार्थी अब अपनी सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गया है, और अपीलार्थी का सक्षम अधिकारी उस पर कोई भी उचित जुर्माना लगाने का अधिकारी होगा।

30. बिना हर्जे के अपीलें खारिज की जाती हैं। अपीलें खारिज।

चेतावनी : यह अनुवाद आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स टूल 'सुवास की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी एस के परासर, (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के लिए सिमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणित होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।